वैदिक यज्ञ

स्वामी यज्ञदेव | पतंजलि संन्यासाश्रम

वैदिक साहित्य में यज्ञ को जगत् की नाभि का रूपक माना गया है। मनुष्य शरीर में नाभि का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उपनिषदों में मनुष्य के जन्म अथवा मृत्यु के केंद्र रूप में नाभि का ही वर्णन है। जिस तरह नाभि के बिगड़ने से पिण्ड बिगड़ जाता है या नाभि के ठीक रहने पर शरीर भी स्वस्थ रहता है उसी तरह ब्रह्माण्ड में यज्ञ का स्थान है। ऋग्वेद में दीर्घतमस् ऋषि द्वारा दृष्टसूक्त में प्रश्नोत्तर द्वारा यज्ञ के नाभि रूप का उद्घाटन किया गया है। सायणाचार्य के अनुसार यहाँ अश्वमेध यज्ञ के प्रथम दिन ब्रह्मा द्वारा यजमान से प्रश्नोत्तर का प्रसंग है-

.... **पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।**[1]

जहाँ सब कुछ बन्धन में बन्ध जाता है वह केन्द्र क्या है? इस प्रकार पूछे जाने पर यजमान अगले मन्त्र से उत्तर देता है-

...**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि।**[2] यह यज्ञ जगत् की नाभि है।

यहाँ भाष्यकार सायण का विशेष वचन है **अयं यज्ञ भूतजातस्य संनहनम्। तत्रैव वृष्ट्यादिसर्वफलोत्पत्तेः सर्वप्राणिनां बन्धकत्वात्**- वर्षा आदि फलों की उत्पत्ति से समस्त प्राणियों के जन्म बन्धन होने से यह यज्ञ प्राणिमात्र का जीवनाधार है।

स्वामी दयानन्द जी ने इस पद का अर्थ करते हुये कहा है कि यज्ञ भूगोल समूह को आकर्षण से बांधने वाला है।

संहिताकारों ने भी **यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिम**[3] यज्ञ को भुवन का नाभि कहा है। यह से संम्पूर्ण चराचर जगत् और विश्वरूप का वर्णन आलंकारिक ढंग से किया गया है। यथा-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तों अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृं पृषदाज्यम्।
पशुन्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये।।[4]

पुरुषसुक्त पर शोध करने वालों ने मन मन्त्रों का आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'सूर्योदय के समय स्वयं सर्वहुत यज्ञ पुरुष ने यजमान का, देवों ने ऋत्विजों का, वसन्त ने आज्य का, ग्रीष्म ने समिधा का, शरद ने हवि का, वर्षा ने बर्हि का अभिनय किया। देवों ने पुरुष को बांधा और सृष्टि-यज्ञ का सूत्रपात हुआ। उसी की अनुकृति में अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों की कल्पना की गई।[5]

वैदिक साहित्य में यज्ञ को देवरथ की संज्ञा दी गई है। यथा-

यद्यज्ञो मनुष्य रथेनैव देवरथमभ्यातिष्ठाति।।[6] मनुष्य अनुष्ठित यज्ञ के द्वारा देवरथ पर आरुढ़ है।

एष वै देवरथो यद् दर्शपूर्णमासौ।।[7] यह जो दर्शपूर्णमास यज्ञ है वह ही देवरथ है।

देवरथो वा एष यद् यज्ञः, यज्ञो वाव देवरथः।।[8] यह जो यज्ञ है वही देवरथ है।

यज्ञ प्राकृतिक शक्तियों को न केवल वहन ही करता है अपितु उन्हें अनुकूल भी करता है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने यज्ञ को देवरथ के रूप में प्रस्तुत किया है। यज्ञ जहाँ ऐश्वर्य रूप है, वहाँ वह ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला भी है। यथा-

यज्ञो हि त इद्र वर्धनः।।[9] यह निश्चय ही ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है।

देवा यज्ञमतवन्त.....इद्रियाय।।[10] उत्तम ज्ञानीजन परम ऐश्वर्य के लिए सुखदायक यज्ञ को विस्तृत करें।

वसुर्यज्ञो वसुमानयज्ञः, यज्ञो वै वसुः।।[11] यह संसार में ऐश्वर्य रूप है। यज्ञ के ज्योतिर्मय स्वरूप का वर्णन ऋग्वेद में उपलब्ध है। यथा-

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभुवसुः।।[12] यज्ञ की मधुर ज्योति लोक लोकान्तरों को पवित्र करती है। सामवेद में भी पठित उक्त मन्त्र का भाषा भाष्य किया गया है- 'यज्ञ की ज्योति वायु आदि देवों का पालक, उनको संस्कारापेक्षया जन्म देने वाली एवं अत्यन्त ऐश्वर्य वाली है।[13]

1 ऋग्वेद - 1.164.34
2 ऋग्वेद-1.164.35
3 तैत्तिरीय संहिता - 7.4.18.2, काठक संहिता - 44.7
4 ऋग्वेद - 10.90.6, 8
5 पुरुषसुक्त का विवेचनात्मक अध्ययन, डॉ. कुसुमलता, पृष्ठ- 159
6 काठक संहिता- 8.8
7 तैत्तिरीय संहिता - 2.5.6.1
8 ऐतेरेय ब्राह्मण- 2.37, कौषीतकी ब्राह्मण- 7.7, जैमिनीय ब्राह्मण 1.129
9 ऋग्वेद- 3.32.12
10 यजुर्वेद- 19.12
11 काठक संहिता-32.4, शतपथ ब्राह्मण-1.7.1.9
12 ऋग्वेद- 9.86.10
13 सामवेद-1031

ज्योतिर्वै यज्ञः[14] – यज्ञ ज्योतिर्मय है।

विराजा ज्योतिषा सह[15] (धर्मो विभाति) विराट्-ज्योति के साथ यज्ञ चमकता है। प्राचीन यज्ञ वैज्ञानिक ऋषियों ने यज्ञ की अनिवार्यता की ओर संकेत करते हुए यज्ञ महत्व का प्रतिपादन किया है। यथा-

स्वाहा यज्ञं कृणोतन[16] – स्वाहा पूर्वक यज्ञ करें। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ऋषि परमेष्ठी प्रजापति द्वारा पठित **प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मणे...।** का भाषा भाष्यं 'अत्युत्तम करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिए जीवन को लगायें' किया गया है तथा द्वितीय मन्त्र में वर्णित 'यज्ञ महत्व' को दिखाया गया है। यथा - जो यज्ञ-

पवित्रमसि – शुद्धि का हेतु है।

द्यौरसि – विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला है।

पृथिव्यसि –वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला है।

मातरिश्वनो धर्मोऽसि – वायु को शुद्ध करने वाला है।

विश्वधा असि– संसार को धारण करने वाला है।

परमेण धान्म्रा दृंहस्व – उत्तम स्थान से सुख को बढ़ाने वाला है। उसका त्याग कभी न करें।[17] तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अर्थ करते हुए लिखा-

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।

परमेण धान्म्रा दृहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।[18]

हे विद्यायुक्त मनुष्य! तू जो यज्ञ शुद्धि का हेतु हैं जो विज्ञान के प्रकाश का और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला, वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला, वायु को शुद्ध करने वाला व संसार को धारण करने वाला तथा जो उत्तम स्थान में सुख को बढ़ाने वाला है। इस यज्ञ को तू मत त्यागकर तथा तेरा यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उसको न त्यागे।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहकर उसके महत्व को निरूपण किया गया है। यथा-

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म।[19] उपनिषदों में यज्ञ मात्र को अग्निहोत्र के रूप में स्मरण करते हुए उसका महत्व बताया गया है। यथा-

एतेषु यश्चरते भाजमानेषु यथाकालं चाहुतयोह्याददायन्।
तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।।[20]

सात लपटां वाली अग्नि की शिखाओं में जो यजमान ठीक समय पर आहुतियां देता हुआ कर्म को पूरा करता है। उसको ये आहुतियां सूर्य किरणों में पहुँचकर संचित कर्म रूप होकर वहाँ पहुँचा देती हैं जहाँ पर जगत् के आधार पर परमात्मा को साक्षात् जाना जाता है।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते।
एवं सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत।।[21]

इस लोक में जैसे भूखे बच्चे माता से सुखादि की याचना करते हैं। ऐसे ही सारे प्राणी अग्निहोत्र (यज्ञ) की उपासना करते हैं।

येन सदनुष्ठानेन सम्पूर्णवि श्वं कल्याणं भवेदाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयोन्मूलनं सुकरं स्यात् तत् यज्ञपदाभिधेयमा

जिस सद्नुष्ठान से संम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो तथा आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक तीनों पापों का उन्मूलन सरल हो, उसे यज्ञ कहते हैं।

सर्वस्मात्पामनोनिर्मुच्यते स य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।।[22]

जो विद्वान अग्निहोत्र करता है, वह सब पापों से छूट जाता है।

यज्ञशिष्टाशिन सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।[23]

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाला अर्थात् यज्ञ कर प्रकृति को शुद्ध बनाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जो बिना यजन किए या केवल अपने पोषण के लिए ही भोजन पकाते हैं, वह रोगों व पापों को ही खाते हैं।

यज्ञदाननतपकर्म न त्यात्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तप श्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।[24]

यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत प्रजाः।।[25]

अग्नि में अच्छी प्रकार डाली हुई घृत, जड़ी-बूटी आदि पदार्थों की आहुति सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य किरणों से वातावरण में मिलकर अपना प्रभाव डालती है, फिर सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न आदि उत्पन्न होते हैं और उनसे सभी मनुष्यादि जीवों का पालन-पोषण होता है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वेद व्याख्याकार पं. रघुनन्दन शर्मा ने संसार में व्यापक व प्रचलित यज्ञ के महत्व के दर्शाया है। यथा- समस्त संसार ने यज्ञों को स्वीकार किया था एवं अब तक संसार

14 काठक संहिता- 31.11
15 तैत्तिरीय आरण्यक-4.21
16 ऋग्वेद-1.13.12
17 यजुर्वेद- 1.2
18 यजु.- 1.2
19 शतपथ ब्राह्मण-1.7.1.5, तैत्तिरीय ब्राह्मण- 3.2.1.4
20 मुण्डक उपविषद- 1.2.5
21 छन्दोग्य उपनिषद- 5.2.4.5
22 जे.ब्रा.-1.9
23 गीता-3.13
24 गीता- 18.5
25 मनु.- 3.76

के प्रायः सभी संम्प्रदायों में वे प्रचलित हैं। यह सक फिजिकल रिलीजन में मेक्समूलर ने भी स्वीकार किया है। विश्व में क्या नये और क्या पुराने, जितने धर्म प्रचलित थे और हैं उन सब में यज्ञ का कोई न कोई प्रकार अवश्य स्वीकार किया गया है। आर्यों की समस्त प्राचीन शाखाओं में यज्ञ प्रचलित था। प्राचीन समय में ग्रीकों तथा रोमवासियों के यहाँ भी यज्ञ प्रचलित थे। पारसियों व वैदिक आर्यों में यज्ञ अब तक प्रचलित है। जैनियों में धूप-दीप, जो यज्ञ का ही अवशिष्ट और सूक्ष्म रूप प्रचलित है। यह ता हुई आर्य शाखा की बात, सेमेटिक शाखा के भी इस समय तीन धर्म- यहूदी, ईसाई एवं मुसलमानी हैं। इनमें से यहूदियों के यहाँ यज्ञ होते थे, वे कुण्ड को 'केर' कहते थे। ईसाई और मुसलमानों में भी उदबती और लोबान आदि जलाने का रिवाज अब तक मौजूद है। भले ही इनके रूप नहीं है। इस तरह से मनुष्य जाति की यह दूसरी सेमेटिक शाखा भी यज्ञ को प्राचीनकाल (पुरातन) से लेकर अब (अधुनातन) और मानती आ रही है। तीसरी पुरानी शाखा में भी यज्ञ के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। चीन वाले यज्ञ को 'घोम' कहते हैं, जो होम के सिवा कुछ नहीं हैं। इस प्रकार से मनुष्य जाति के तीनों विभागों में यज्ञ होते थे और हो रहे हैं। मिश्र की प्राचीन जातियों तथा अमेरिका के रेड इण्डियनों जाति में भी यज्ञ की प्रथा जारी थी। कहने का अभिप्राय है कि **यज्ञ मनुष्य का आदिम धर्म है।**[26]

अन्य विद्वानों ने भी यज्ञ के वैज्ञानिक महत्व की ओर संकेत किया है। यथा- वेद में संपूर्ण विज्ञान यज्ञ के रूप में प्रगट किया गया है। जैसे बिना विज्ञानशाला (लेबोरेटरी) की सहायता के केवल पुस्तकों से वर्तमान साइन्स की शिक्षा नहीं हो सकती, वैसे ही यज्ञशालाओं के बिना वैदिक विज्ञान की शिक्षा भी अपूर्ण रहती है। वेद मंत्रों में जो विज्ञान के सिद्धान्त विदित होते हैं, उनका प्रयोग यज्ञों के द्वारा ही हो सकता है। ये यज्ञ दो प्रकार के हैं- एक प्राकृत यज्ञ, जो प्रकृति में सतत हो रहा है और दूसरा अनुष्ठेय या कृत्रिम यज्ञ, जो मनुष्यों द्वारा किया जाता है। प्राकृत यज्ञ ही इस कृत्रिम यज्ञ का आधार है। प्राकृत यज्ञ में विज्ञान के सिद्धान्त बतायें गये हैं तथा अनुष्ठेय यज्ञों में इनका प्रयोग।[27]

हमारे समस्त योगक्षेम का केन्द्र 'यज्ञ' है। यज्ञ का प्रतिनिधि है- अग्नि। अग्नि को आदि मानव अविष्कार का परमोत्कर्ष माना जाता है। भौतिक विज्ञान, केवल प्रकृति की साधना है किन्तु यज्ञ विज्ञान, प्रकृति और पुरुष दोनों की साधना हैं।

26 वैदिक सम्पत्ति, पं. रघुनन्दन शर्मा, पृष्ठ-282
27 वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, गिरधर शर्मा, पृष्ठ-5

कल्याणकारक

ऋग्वेद में अग्निहोत्रादि यज्ञों से कल्याण की कामना करते हु यज्ञ का महत्व बताया गया है। यथा- **शमु सन्तु यज्ञाः** - हवन यज्ञ कल्याण्कारी हों।[28]

अन्यत्र वैश्वानर अग्नि देवता और मन्त्र में यज्ञाग्नि विज्ञान का महत्व प्रतिपादित है। यथा-

यं देवासो अजनयन्ताग्नि यस्मिन्नाजुहुवुर्भुवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा।।[29]

वेद विज्ञान के अन्वेषक विद्वान ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है- जिस यज्ञाग्नि को यज्ञ विज्ञान के ज्ञाता उत्पन्न करके विश्व कल्याण के लिये विविध भेषज तत्वों की उसमें आहुतियाँ देते हैं उसकी ज्वाला, ताप तथा दीप्ति पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष लोक को शुद्ध करती हुई अपने सामर्थ्य से स्वप्रभाव को तेजस्वी बनायें रखती है। पुराणकारों ने भी यज्ञ को कल्याणकारी माना है। यथा-

यज्ञेनऽऽप्यायिता देवा वृष्त्यत्सर्गेण मानवाः।
आप्यायनं वै कुर्वन्ति... यज्ञा... कल्याणहेतवः।।[30]

यज्ञ से तृप्त देवगण वृष्टि आदि से मनुष्यों को तृप्त करते हैं। यज्ञ कल्याण का हेतु है।

आयुधारक

संहिता तथा ब्राह्मणग्रन्थकारों ने यज्ञके आयुधारक महत्व के सम्बंध में संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला है। यथा-

यज्ञेनास्मा (यजमानाय) आयुर्दधाति..... सर्वे वा एते- (ऋत्विजः) अस्मै चिकित्सन्ति।[31]

ऋत्विग्गण यज्ञ के द्वारा यजमान की चिकित्सा करते हैं और उसमें आयु को धारण कराते हैं।

यदग्रये शुचये (निर्वपति) आयुरेवास्मिन् तेन दधाति।[32]

पवित्र अग्नि में जो आहुति दी जाती है उससे यजमान का आयु, यज्ञ आयु प्रदान करता है। या (यजमान को आयु मिलती है)

यज्ञो मे आयुर्दधातु[33] - यज्ञ मुझे आयु धारण करायें।

यज्ञो वा आयुः[34] - यज्ञ ही जीवन है।

28 ऋग्वेद- 7.35.7
29 ऋग्वेद- 1.88.9
30 पद्मपुराण- 3.124, विष्णुपुराण- 6.18
31 मैत्रायणी संहिता-2.3.5
32 तैत्तिरीय संहिता- 2.2.4.3
33 काठक संहिता- 5.3
34 ताड्य महाब्राह्म-6.4.4